Janak: A Journal of Humanities
(I S S N : 3 1 1 7 - 3 4 6 2) Volume: 01, Issue: 01, August, 2025
Available on https://janakajournal.in/index.php/1/about

मानव-जीवन की निरर्थकता को प्रतिपादित करता नाटक ‘‘बंद रास्तों के बीच’

दिनेश कुमार माली
तालचेर,ओड़िशा
E-Mail:- dinesh911mali@gmail.com

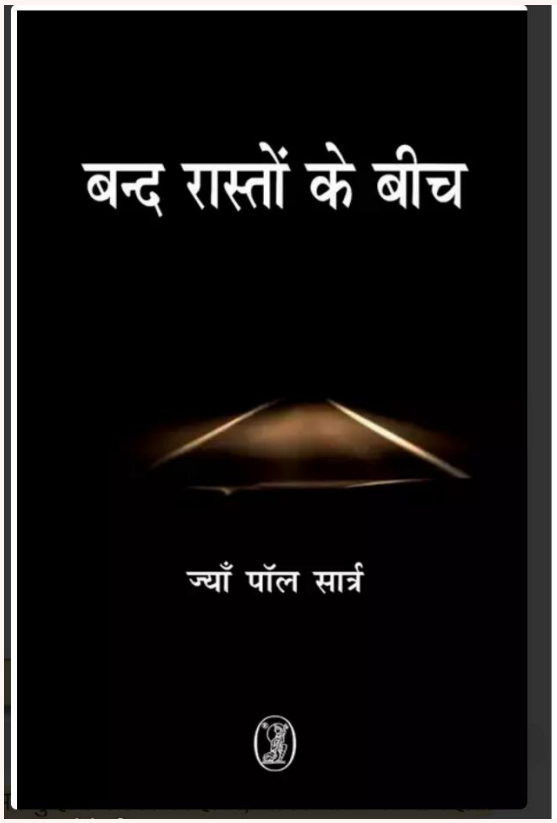

दो-तीन महीने पूर्व नीदरलैंड से ओड़िशा में अपने किसी रिश्तेदार की शादी में उपस्थिति दर्ज कराने के लिए डॉ. ऋतु शर्मा नंनन पांडे आई थी, तो समय निकालकर एक दिन के लिए वह सपरिवार अंगुल भी आई थी। अंगुल की साहित्यिक संस्था ‘संवाद-घर’ के अध्यक्ष प्रोफेसर शांतनु सर ने उनके सम्मान में वह एक साहित्यिक आयोजन रखा गया था। उस आयोजन में मैं भी शरीक हुआ था, वहाँ उन्होंने मुझे तीन पुस्तकें ‘बन्द रास्तों के बीच’, ‘नीदरलैंड की लोककथाएं और कविता-संकलन ’संदूकची’ उपहारस्वरूप दी थी। दो किताबें नीदरलैंड उनके नीदरलैंड पहुँचने के एक-दो सप्ताह के भीतर पढ़ ली, मगर ‘बंद रास्तों के बीच’ (ज्याँ पॉल सार्त्र की रचना ‘नो एक्ज़िट’ का प्रसिद्ध नाटककार विवेकानंद और ऋतु द्वारा किया संयुक्त अनुवाद) जान-बूझकर छोड़ दिया, क्योंकि सार्त्र को पढ़ने और समझने के लिए समय और धैर्य की जरूरत होती है। साथ ही, मूड़ और स्थित-प्रज्ञावस्था की भी।

बंद रास्तों के बीच लेखक- डॉ ऋतु शर्मा
डॉ - विवेकानंद
प्रकाशक: वाणी प्रकाशन
प्रकाशित वर्ष:2023
आईएसबीएन:: 9788181435248
पृष्ठ : 68
मुखपृष्ठ : सजिल्द

1964 में नोबेल पुरस्कार विजेता नाटककार, दार्शनिक ज्याँ पॉल सार्त्र, (यद्यपि उन्होंने यह पुरस्कार स्वीकार नहीं किया) द्वारा लिखी गई कृति ‘नो एक्ज़िट’ (फ्रेंच में हुईस कलोस) को नाटक कहूँ या एकांकी - समझ नहीं पा रहा हूँ, फिर भी आलोचना की दृष्टि से ‘नाटक’ ही मान लेना सही लग रहा है। उचित शांत परिवेश की प्रतीक्षा करते-करते आखिर समय आ गया कि डॉ॰ ऋतु शर्मा जी और विवेकानंद जी के द्वारा अनूदित इस नाटक को पढकर विश्व के अन्यतम बुद्धिजीवी साहित्यकार के मन-मस्तिष्क की टोह ली जाए।

कभी जमाना था, जब वैश्विक साहित्य पटल में ज्याँ पॉल सार्त्र और सिमोन द बोवियर की तूती

Janak: A Journal of Humanities
(I S S N : 3 1 1 7 - 3 4 6 2) Volume: 01, Issue: 01, August, 2025
Available on https://janakajournal.in/index.php/1/about

बोलती थी। उनका लिखा हुआ कोई भी आलेख किसी आंदोलन से कम नहीं होता था। उन दोनों की भेंट पेरिस में दर्शनशास्त्र 'एग्रीगेशन' के अध्ययन के दौरान हुई थी। जिन्होंने तत्कालीन दर्शनिक, साहित्यिक और राजनैतिक धारणाओं को काफी प्रभावित किया था। निस्संदेह सार्त्र एक अजीब इंसान थे। उन्हें नोबल प्राइज मिलता है, मगर अस्वीकार कर देते हैं, कारण उनकी अपनी स्वतंत्रता में विश्वास। वे नहीं चाहते थे कि लेखक संस्थागत बने। सिमोन द बिवोयर भी अलग किस्म की महिला थी, द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद बुद्धिजीवियों की जिंदगी पर उनके द्वारा लिखा गया उपन्यास 'मंडारिन्स' बहुचर्चित रहा।

ओशो रजनीश की तरह वे दोनों पारंपरिक विवाह-प्रथा को असंगत बताते है, और अस्वीकार करते है, क्योंकि विवाह व्यक्ति की स्वतंत्रता पर अंकुश लगाता है। विवाह ही नहीं सामाजिक व्यवस्था, धर्म, आस्था, विश्वास – सब-कुछ तो इसी श्रेणी में आता है। वे दोनों पेरिस के सेंट-जर्मन-दे-डे कैफे, द फ्लोर ले टू मागो, मिस्त्राल होटल में मिलते थे अथवा किराए के अपार्टमेंट में साथ रहते थे। बिना किसी शर्त, एक-दूसरे के लेखन में मदर करते थे। यद्यपि वे स्थायी रूप से एक-दूसरे के साथ नहीं रहे, मगर पत्रों, बातचीत, साझा परियोजनाओं के माध्यम से आजीवन जुडे रहे। 'लेटर्स टू सार्त्र और 'लेटर टू बोवियर' के माध्यम से कह सकते है कि उनका रिश्ता भी दोष मुक्त नहीं था, क्योंकि सिमोन के प्रेमी थे नेल्सन अलग्रेन, क्लॉड लैजमेन, जबकि सार्त्र के संबंध थे ओल्गा, वांडा कोसाकिविक्ज से। खुले रिश्तों पर उनकी अपनी सहमति थी। दूसरे शब्दों में, उनके संबंध जटिल थे, बौद्धिक भी, व्यक्तिगत भी, फिर भी दीर्घावधि 1929-1980 तक चले और उनके साझा जुनून की वजह से साहित्य और सामाजिक नियमों को चुनौती देते हुए स्वतंत्रता, जिम्मेदारी और मानव अस्तित्व की निरर्थकता को प्रतिपादित किया। यही वजह है की सार्त्र लिखते हैं 'बीइंग एंड नथिंगनेस (1943)', 'नो एग्जिट (1944)' तो सिमोन लिखती है "द सेकेंड सेक्स (1949)', 'द अदर'।

ज्याँ पॉल सार्त्र ने यह नाटक 1944 में लिखा और विवेकानंद तथा डॉ. ऋतु शर्मा द्वारा प्रथम पेपरबैक संस्करण 2006 में वाणी प्रकाशन से प्रकाशित हुआ था और दूसरा पेपर बैक संस्करण 2023 में 'बंद रास्तों के बीच' शीर्षक से। परवर्ती काल में इसी नाटक से प्रभावित होकर नोबल प्राइज विजेता सैमुअल ब्रेकट ने 'वेटिंग फॉर गोडोट' नाटक की रचना की, जिसके मंचन के समय सार्त्र और सिमोन दोनों उपस्थित थे। ये दोनों विचारोत्तेजक नाटक अस्तित्ववाद के प्रतिनिधि नाटक माने जाते है, जिसमें रिश्तों की जटिलता और मानव स्वभाव का लचीलापन दिखाया गया है।

यह नाटक पढ़ने के बाद मेरे मन में अभिनेता सुरेश औबेरॉय की हिन्दी फिल्म 'ऐतबार' (1985) की याद आ गई, जिसकी शूटिंग एक ही घर में की गई थी - जो कि अल्फ्रेड हिचकॉक की क्लासिक थ्रिलर "डॉयल एम फोर मरडर" का रीमेक है, जहां फिल्म की पूरी कहानी मुख्य रूप से एक ही स्थान पर केंद्रित है। इसी तरह इस पूरे नाटक में भी एक ही स्थान है - नरक में बंद कमरा, जिसमें तीन मैले-कुचैले सोफे पड़े हुए हैं, निरंतर रोशनी जल रही है, मगर उसे बुझाने के लिए कोई बटन या स्विच नहीं है। न कोई दर्पण है, न कोई खिड़की। बस एक दरवाजा है, वह भी बंद । इस हिसाब से इस नाटक का शीर्षक 'बंद कमरा' होनी चाहिए, न कि 'बंद रास्तों के बीच', क्योंकि 'बंद रास्तों के बीच' का अर्थ किसी सिनेमा हॉल के आठ-दस बंद दरवाजों वाला प्रतिबिंब उभर कर सामने आता हैं। प्रवेश, निकासी के अतिरिक्त कुछ आपातकालीन रास्तों समेत। जबकि नाटक के दृश्य में केवल एक दरवाजा हो दिखाया गया है, वह भी बंद यानि 'नो एग्जिट', उससे बाहर नहीं जा सकते। खैर, 'नो एग्जिट' शब्द पर उपनिषदों की एक कहानी याद आने लगती है, जिसमें 84 लाख दरवाजों वाला महल है और उसमें केवल एक दरवाजा खुला है,

Janak: A Journal of Humanities
(I S S N : 3 1 1 7 - 3 4 6 2) Volume: 01, Issue: 01, August, 2025
Available on https://janakajournal.in/index.php/1/about

ठीक इस नाटक की तरह। इस महल के भीतर एक अंधे आदमी को रखा गया है, वह बाहर निकलना चाहता है। इसलिए एक जगह से दीवार पकड़ते-पकड़ते अपनी यात्रा शुरू करता है, कई सालों बाद वह खुले दरवाजे के पास पहुंचता है, और जैसे ही वह खुले दरवाजे के पास पहुंचता है तो उसे अपने शरीर पर खाज-खुजली आने लगती है, उसे खुजलने के कारण उसके हाथ दीवार से हट जाते है। कुछ ही क्षणों में वह खुला दरवाजा पार हो जाता है। शुरू होता है अंतहीन यात्रा का सिलसिला। फिर से वह 84 लाख दरवाजों के जाल में फंस जाता है। यहां उपनिषद शिक्षा मिलती है, मनुष्य योनि केवल एक ऐसा दरवाजा है, जिसके माध्यम से वह ईश्वर प्राप्ति कर सकता है। बाकी सारी 83,99,999 भोग योनियां है, जिसमें ईश्वर प्राप्ति के सारे रास्ते बंद है। अगर इस नाटक का शीर्षक 'बंद कमरा' होता तो उपनिषद की इस कहानी के आधार पर निष्कर्ष निकाला जा सकता था कि नाटक के अंत में वह बंद दरवाज़ा खुलता है, फिर भी इसके तीनों पात्रों की आत्माएं खुले दरवाजे से बाहर निकलना नहीं चाहती है, भले ही, मानसिक तनाव सहते हुए नरक की घोर यातना फिर से क्यों नहीं झेलनी पड़े। उन्हें भी अपनी दबी भावनाओं के कारण मानो खाज-खुजली आने लगी हो। बुद्ध ने कहा था कि मैंने ईश्वर तक पहुँचने वाले रास्ते को देखा है, मगर इस संसार का कोई भी लोग इस रास्ते से जाना नहीं चाहता है। ज्यॉ पॉल सार्त्र का नाटक 'नो एक्ज़िट' भी तो यही कहता है। जाने के लिए 'एक्ज़िट' रास्ता है, मगर कोई उस रास्ते से 'एक्ज़िट' करना ही नहीं चाहता है।

इस नाटक में तीन पात्र हैः-

1. जोसेफ गार्सिन (एक डरपोक पत्रकार)
२. इनेज सेरोनो (एक क्रूर डाक महिला कर्मचारी)
3. स्टेला रिंगॉल्ट (आत्ममुग्ध सामाजिक महिला)

अपने जीवन-काल में अपने कुकर्मों के कारण ये तीनों महापापी थे, इसलिए उन्हें नर्क मिला। भारतीय मिथकों वाला नरक नहीं-जिसमें उबलते तैल की कड़ाही में जीव को डाला जा रहा हो अथवा खून मवाद भरी बदबूदार नदियों से गुजारा जा रहा हो, लोहे के गरम गरम सलाखों पर सुलाया जा रहा हो; इस नाटक में वैसा नरक नहीं है। उनका नरक एक 'बंद कमरा' है, जिसमें मृतात्माएं अपने-अपने सोफे पर बैठकर एक-दूसरे को अपने गुजारे जीवन की गाथा सुनाते हैं, जिससे नाटककार यह सार निकालता है कि 'नरक और कुछ भी नहीं है, बल्कि हमारे आस-पास के दूसरे लोग है।'

यह नाटक मानव स्वतंत्रता, आत्म-छल (बैड फेथ) और दूसरों की नजरों में अपनी पहचान बनाने के लिए लालायित होने वाली प्रवृति की पड़ताल करते हैं। इसमें कोई उपकथानक नहीं है, सीधे तीखे संवाद हैं, और मनोवैज्ञानिक तनाव की पृष्ठभूमि है। तीनों पात्र एक-दूसरे की मीन-मेख निकालते हैं। गार्सिन को सम्मान चाहिए, मगर कोई देता नहीं। इनेज को क्रूरता में आनंद आता है और स्टेला अपनी प्रशंसा सुनना चाहती है, मगर कोई करता नहीं। यहाँ यह उल्लेखनीय वक्तव्य है कि 1944 में मनुष्य समाज में अस्तित्व की लड़ाई चल रही थी तो आज 2025 के सोशियल मीडिया वालें युग में अस्तित्ववाद की लड़ाई अति चरम पर होगी। इस युग में हर कोई दूसरों की नजरों में जीता है। फेसबुक, ट्विटर, यू-ट्यूब - सभी में अपने-'लाइक्स' खोजते हैं। उसी को अपनी इमेज मानते हैं। कम 'लाइक्स' मिलने पर अपना वजूद मिटते हुए नजर आता है। इस दृष्टिकोण से यह नाटक आधुनिक युग में ज्यादा प्रासंगिक लगता है, जिसे हम इस नाटक के पात्रों द्वारा आसानी से समझ सकते हैं।

रियो-डी-जेनेरियो में रहने वाला गार्सिन पूर्व सैनिक है और पत्रकार भी। उसने युद्ध में भाग लेने से इंकार किया तो उसे कायर समझकर गोली मार दी गई। मगर मरने के बाद भी वह अपने आपको कायर मानना नहीं चाहता है। कायर मानने की जिम्मेदारी से भागता है, वह चाहता है कि दूसरे उसे

Janak: A Journal of Humanities
(I S S N : 3 1 1 7 - 3 4 6 2) Volume: 01, Issue: 01, August, 2025
Available on https://janakajournal.in/index.php/1/about

कायर न माने, बल्कि उसे नायक समझे। 'बंद रास्तों के बीच' नाटक का यह सीन देखने लायक है:-

"स्टेला : तुम्हारी दिक़्क़त यह है कि तुम बहुत ज़्यादा सोचते हो!

गार्सिन : यहाँ करने को और है भी क्या? एक समय था जब मैं वहाँ सक्रिय था...ओह, काश! कि मैं उनके साथ दुबारा होता! केवल एक दिन के लिए तो उनके झूठ को वापस उनके मुँह पर दे मारता ! लेकिन मुझे बन्दी बना दिया गया है और वो लोग मेरी ज़िन्दगी के फ़ैसले कर रहे हैं, बिना सोचने का कष्ट किए। यह ठीक भी है, क्योंकि मैं मर चुका हूँ- मृत और अतीत का एक हिस्सा है। (अपने पर हँसता है) (क्षणिक चुप्पी)।

स्टेला : (प्यार से) गार्सिन!

गार्सिन : अच्छा सुनो! क्या तुम मेरा एक काम कर दोगी? नहीं, तुम पीछे मत हटना। यह जानकर तुम्हें अजीब लगा होगा कि मैं जानता हूँ कि मैं तुमसे कोई सहायता चाहता हूँ जो तुम शायद कभी कर नहीं पाओगी। पर अगर तुम कोशिश करो, पूरी निष्ठा, इच्छाशक्ति व परिश्रम के साथ, तो मैं कहूँगा कि हम दोनों सचमुच ही एक-दूसरे से परस्पर प्रेम कर सकते हैं। इसे इस रूप में समझो कि हज़ारों लोगों का कहना है कि मैं कायर हूँ पर हज़ारों के कहने से क्या होता है! अगर एक आदमी, सिर्फ़ एक हो जो डंके की चोट पर यह कह सके कि मैं भगोड़ा नहीं हूँ। मैं उन लोगों में से नहीं हूँ जो मैदान छोड़कर भाग खड़े होते हैं। और यह भी कि मैं एक बहादुर और सच्चा देशभक्त हूँ और इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं। केवल एक आदमी के विश्वास के कारण ही मैं बच पाऊँगा! क्या तुम्हें मुझमें इतना विश्वास है? अगर हाँ, तो मैं तुम्हें पूर्ण विश्वास और आस्था के साथ हमेशा के लिए अपना लूँगा स्टेला... क्या तुम वह विश्वास दे पाओगी?

स्टेला : (हँसकर) ओह, मेरे प्यारे बुद्धराम! तुम समझते हो कि मैं एक कायर व्यक्ति से प्रेम करूँगी?"

(बन्द रास्तों के बीच, पृष्ठ-59)

यह भी बात है इस नाटक में वह त्रिकोणीय रिश्ते का केंद्रबिन्दु है। एक तरफ उसे इनेज खींचती है तो दूसरी तरफ स्टेला। दोनों के बीच उसकी कमजोरियां उजागर होती है तो वह हमेशा के लिए दूसरो की नजरों में अधूरा रह जाता है। अनंतकाल के लिए ।

दूसरी पात्र है-इनेज़। एक क्रूर डाक महिला कर्मचारी, डोमिनेटिंग लेस्बियन महिला। अपनी चचेरी बहन के पति के साथ अवैध संबंध में लिप्त होने के कारण वह मारी गई और चचेरी बहन ने आत्महत्या कर ली। वह दूसरों को नियंत्रित करने में अपनी शक्ति अनुभव करती है। अपनी असुरक्षा छुपाने का उसका यह तरीका है। वह हर वक्त दूसरों की मीन-मेख निकालती रहती है। वह उसको गतिशील बनाने में उत्प्रेरक का काम कर रही है। गार्सिन और स्टेला की गलतफहमी को उजागर करने में पीछे नहीं रहती। इस वजह से तनाव बढ़ता है और जैसे-जैसे तनाव बढ़ता है वैसे-वैसे नरक की यंत्रणा भी। दूसरे शब्दों में, नरक कोई स्थान नहीं, बल्कि हमारे इर्द-गिर्द रहने वाले दूसरे लोग होते हैं। वह अपनी स्वतंत्रता को पहचानती है, मगर अपने सिडक्टिव नेचर के कारण दूसरों को यातना देने लगती है। इस वजह से वह कोई भी क्रिएटिव काम नहीं कर पाती। जिसे पाठक नाटक के पात्रों के वार्तालाप से आसानी से समझ सकते हैं:-

"इनेज़ : इतना गुरूर ठीक नहीं। दरअसल मैं उसकी नस-नस में बसी हुई थी। वह मेरी आँखों से ही दुनिया देखता था। जब फ्लोरेन्स ने उसे छोड़ा, मैंने उसे हथिया लिया। हम शहर के दूसरे छोर पर 'एक बेडरूमवाले फ्लैट' में रहते थे।

गार्सिन : और फिर ?

हुनेज़ : और इसके बाद का काम ट्रॉम ने तमाम कर दिया। मैं हर रोज़ उसे याद दिलाती थी कि प्रिय! तुम दोनों ने उसे पीसकर मार डाला। (रुककर) सचमुच मैं कितनी क्रूर हैं।

गार्सिन : और शायद मैं भी उतना ही क्रूर हूँ।

Janak: A Journal of Humanities
(I S S N : 3 1 1 7 - 3 4 6 2) Volume: 01, Issue: 01, August, 2025
Available on https://janakajournal.in/index.php/1/about

इनेज़ नहीं! तुम क्रूर नहीं बल्कि तुम तो कुछ और ही हो।

गार्सिन : वह क्या ?

इनेज़ : मैं तुम्हें बाद में बताऊँगी। जब मैं कहती हूँ कि मैं क्रूर हूँ तो मेरी मुराद यह है कि मैं लोगों को सताए बिना, रह नहीं सकती। जलते अंगारे की तरह, जैसे किसी के हृदय पर कोई जलता अंगारा रख दे। जब मैं अकेली होती हूँ तो मानो बुझ जाती हूँ। छह महीनों तक मैं उसके दिल को दहकाती रही। अब वहाँ सिवा राख के कुछ नहीं बचा है। एक रात वह अचानक उठी और उसने गैस का चूल्हा जलाया। तब मैं सो रही थी। इसके बाद वह वापस बिस्तर पर आकर सो गई। तो आप लोग आगे की कहानी समझ गए होंगे !

गार्सिन : हाँ! हाँ! ठीक है।"

(बन्द रास्तों के बीच, पृष्ठ-41)

तीसरी पात्र स्टेला सुंदर, आत्म-मुग्ध धनी व सामाजिक महिला है। वह अपने प्रेमी को छोड़ती है, अपने नवजात शिशु की हत्या कर देती है। इस वजह से उसकी निमोनिया से मौत होती है और नरक मिलता है। वह तारीफ की भूखी है। उसकी पहचान अधूरी है, अगर कोई प्रशंसा न करे। वह गार्सिन की आंखों से अपनी पहचान चाहती है। बाहरी मान्यताओं पर। इनेज़ स्टेला को बार-बार धिक्कारती है, तो तनाव और बढ़ जाता है। वह गार्सिन को आकर्षित करती है, मगर इनेज़ की उपस्थिति उसे असहज कर देती है, क्योंकि वह अपनी असलियत से भागती है। इस संदर्भ में नाटक का निम्न दृश्य द्रष्टव्य है:-

" इनेज़ : झील-सी नीली आँखें! स्टेला, ज़रा इसकी बातें तो सुनो, क्या तुम्हें कायर पसन्द है?

स्टेला : तुम्हें पता होना चाहिए कि मुझे इन बातों की तनिक भी परवाह नहीं। मेरी नज़र में कोई कायर हो या वीर. कोई फर्क नहीं पड़ता ! बस, उसे अच्छा चुम्बन लेना आना चाहिए!!...

गार्सिन : वहाँ वे लोग अपनी कर्सियों पर अधलेटे हैं... सिगार पीते हुए कितने ऊबे-से दीख रहे हैं। और वे ऊँघ रहे हैं.. एक धुँधले सपने-सी सोच उनके दिमाग में कि... 'गार्सिन कितना कायर था!... और भाग्यशाली हो तुम दोनों। क्योंकि तुम दोनों के बारे में धरती पर कोई कुछ भी नहीं सोच रहा। किन्तु मैं-मेरी मौत की दास्तान बहुत लम्बी है।

इनेज़ : गार्सिन। अपनी बीवी के बारे में भी तो कुछ बताओ?

गार्सिन : ओह! मैंने तुम्हें बताया नहीं था, वह मर चुकी है।

इनेज़ : मर गई?

गार्सिन : हाँ, वो अभी मरी है, करीब दो महीने पहले।

इनेज़ : क्या सदमे से?

गार्सिन : और किस वजह से वह मरती? जो हुआ, अच्छे के लिए हुआ। देखो, युद्ध समाप्त हो चुका है। मेरी पत्नी मर चुकी है और मैंने इतिहास में अपने लिए जगह बना ली है। (हल्की कराह के साथ अपना चेहरा सहलाता है। स्टेला उसकी बाँह थाम लेती है।)

स्टेला : ओह, मेरे प्यारे-बेचारे! मेरी ओर देखो प्लीज़ ! देखो ना, मुझे छुओ, और मेरा स्पर्श करो! (स्टेला उसका हाथ पकड़कर अपने कन्धे पर रखती है।) यहीं अपना हाथ रखे रखना। (गार्सिन खीझता हुआ-सा अपने को हटाता है।) नहीं-नहीं, ऐसा मत करो। वे लोग क्या सोच रहे होंगे, इस बात से तुम क्यों परेशान होते हो। एक-के बाद-एक सब मर जाएँगे, उन्हें भूल जाओ! अब तो केवल मैं हूँ।"

(बन्द रास्तों के बीच, पृष्ठ-58)

इस तरह तीनों पात्र एक-दूसरे के लिए दर्पण है, जिसमें वे अपनी असली शक्लें देख सकते हैं। त्रिकोणीय रिश्ते में एक-दूसरे की इच्छाएं और असुरक्षा दुख का कारण बनती है। इस नाटक में गार्सिन को इनेज़ से मान्यता चाहिए, अपने साहसी होने की। इनेज़ चाहती है स्टेला पर नियंत्रण करना

Janak: A Journal of Humanities
(I S S N : 3 1 1 7 - 3 4 6 2) Volume: 01, Issue: 01, August, 2025
Available on https://janakajournal.in/index.php/1/about

और स्टेला चाहती है गार्सिन की प्रशंसा। जबकि कोई देने या करने को तैयार नहीं है। इसलिए एक-दूसरे के दुखों की कारण बनती है। इस उदाहरण को, हम भारतीय परिप्रेक्ष्य में समझ सकते है, राजा भृतर्हरि की कहानी से। गुरु गोरखनाथ भृतर्हरि के लिए अमर फल लाता है, जिसे वह नहीं खाकर अपनी रानी पिंगला को देता। रानी नहीं खाकर अपने प्रेमी प्रहरी को देती है और वह प्रहरी अपनी प्रेमिका वैश्या को, और वह वेश्या फिर से भृर्तहरि को। अतः भृतर्हरि समझ जाता है कि मेरा मन रानी पिंगला पर, पिंगला का मन प्रहरी पर, प्रहरी का मन वैश्या पर और वैश्या की मन राजा पर। इस प्रकार इच्छाए और तृष्णा का यह चक्र अनंत है, जिसे पूरा कारण मनुष्य जीवन में असंभव है। 'नो एक्ज़िट' वाला ज्ञान पाते ही भृतर्हरि राजपाट छोडकर वैरागी बना जाता है और 'वैराग्य शतक' की रचना करता है। दूसरे शब्दों में, वह नरक के दरवाजे की दहलीज लांघ जाता है। मगर क्या हम लांघ सकते हैं? नहीं। ठीक इसी तरह गार्सिन को मान्यता, इनेज को नियंत्रण तथा स्टेला को प्रशंसा चाहिए - मिलती नहीं है। मिलने की उम्मीद में वे नरक का दरवाजा खुलने पर भी नहीं बाहर निकलते है। जैसे किसी मरणासन्न व्यक्ति के मुंह में शहद की एक बूंद गिरने पर वह दबे पाँव आ रही मौत की आहट को भी भूल जाता है।

इस नाटक के बंद कमरे में दर्पण नहीं होने का अर्थ यही है - वे अपनी पहचान एक दूसरे की नजरों से देख सकते हैं, जो उनके लिए सजा बन जाती है। राजस्थानी भाषा में एक कहावत है - 'खाना खाओ अपनी पसंद का और कपड़े पहनों दूसरों की पसंद का।' अगर कपडे आपकी पहचान है, मगर दूसरों पर निर्भर करती है जिससे हमारी अपनी स्वतंत्रता का हनन होता है - यही है सार तत्व, ज्याँ पॉल सार्त्र के 'बेड फैथ' का। हम अपनी इच्छानुसार क्यों नहीं रह सकते है? दूसरों की इच्छा अपने पर क्यों थोपे, सामाजिक, आर्थिक मान्यताओं के नाम पर ? इनेज़ समलैंगिक है, स्टेला का नारीत्व सतही है। यह पाश्चात्य समाज है, पुरुष के हित सार्त्र के अनुसार नरक पारंपरिक यातना नहीं है, बल्कि दूसरों के साथ रहना ही नारकीय यंत्रणा है। इसलिए विवाह भी यंत्रणा है, मगर स्वतंत्रता भी एक बोझ है - इसे नकारने से हम अपने ही बनाए नरक में फंस जाते हैं।

सार्त्र के 'अस्तित्वाद' को भारत के 'चार्वाकवाद' से तुलना की जाती है। चार्वाक कहता है – 'ऋण कृतं घृतं पिबेत', उधार करके घी पीओ। शरीर भस्मीभूत होने के बाद किसने देखा, क्या होगा? अस्तित्ववाद भी तो यही कहता है - भूत और भविष्य को भूलकर वर्तमान में अच्छे से जिओ; बैड फेथ में नहीं। न खुद को धोखा दो और न दूसरों को। मनुष्य जन्म का कोई पूर्व निर्धारित उद्देश्य नहीं होता है। हिंदी की कहावत है - 'पूत के पांव पालने में पहचाने जोते है।' यानि पहले पूत आएगा पालने में, फिर पांव देखकर भविष्य बताया जाएगा। पहले अस्तित्व, फिर सार।

सार्त्र का यह नाटक दर्शाता है कि अपने कर्म, अपने स्वभाव, अपनी प्रकृति और अपनी स्वतंत्रता को पहचानो, वह भी बिना बाहरी बहानों का सहारा लिए, तभी आप कुछ क्रिएटिव काम कर पाएंगे। अपनी स्वतंत्रता की जिम्मेदारी का वहन खुद को करना पड़ेगा, दूसरों पर निर्भर किए बिना। एक महत्वपूर्ण बात सार्त्र और यहां जोड़ते हैं - 'जीवन को अर्थहीन माने'। भृर्तहरि का वैराग्य हो, अघोरियों को श्मशान निवास या जैन साधुओं द्वारा मानव खोपड़ी का साथ में रखना - यह याद दिलाने के लिए कि जीवन अर्थहीन है। कितने भी बड़े राजनेता बनो, उद्योगपति बनो या बडे-से बड़ा अधिकारी बनो – सभी का अंतिम आश्रय स्थल 'श्मशान' है। हलधर नाग की कविता *' हमारे गाँव का श्मशान-घाट'* की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य है:-

" श्मशान भूमि से लगता है डर ,
लेकिन यह हमारा असली घर

Janak: A Journal of Humanities
(I S S N : 3 1 1 7 - 3 4 6 2) Volume: 01, Issue: 01, August, 2025
Available on https://janakajournal.in/index.php/1/about

यहाँ की कई लोग यात्रा कर चुके हैं,
और बहुत सारे जाने को तैयार हैं
यहाँ हम सभी यात्रा करेंगे,
अंत में यहाँ पर इकट्ठे होंगे
यह है हमारे गाँव का श्मशान- घाट।"

ओड़िया संत कवि भीम भोई भी कहते है - यश-अपयश यहीं रहने दो। हमें अपनी स्वतंत्रता से किसी प्रकार का समझौता नहीं करनी चाहिए। अतः भीम भाई कहते हैं - इस धरती पर दूसरों पर निर्भर करना दुखों का कारण है, इस वजह से प्राणियों की आर्त-पुकार मैं सहन नहीं कर सकता। मेरा जीवन नरक में जाए, जगत का उद्‌वार हो। सार्त्र भी इसी पंक्ति को दूसरे ढंग से दोहराते हैं कि अपने मन की इच्छाओं को जाने बिना समाज के भय से दूसरों पर अंकुश लगाना मनुष्यता का गला घोटना है। सब-कुछ जानते हुए भी खुला दरवाजा होने पर भी एक दूसरे पर निर्भर करने वाले लोग उन्मुक्त नहीं रह सकते हैं, जैसे पालतु तोता पिंजरा खुला होने पर आकाश में नहीं उड़ जाता। वह फिर उसी पिंजरे में लौट आता है, जिसका वह आदी हो चुका है।

सैमुअल ब्रैकेट ने 1953 में *'वेटिंग फॉर गोडोट'* नाटक लिखा था। एबसर्ड नाटक। कम से कम शब्दों का प्रयोग। जिसमें व्लादिमीर और एस्ट्रागन (गोगो) किसी अनाम सड़क के किनारे पेड़ के नीचे 'गोडोट' के आने का इंतजार करता है, मगर गोडोट नहीं आता है, उसका संदेश वाहक आता है। गोडोट कौन है ? यह स्पष्ट नहीं है। भगवान, आशा या जीवन जीने का अर्थ ? अपनी स्वतंत्रता का प्रयोग करते हुए जीवन का अर्थ खोजने में, न कि किसी दूसरे के सापेक्ष अपनी पहचान बनाना ही अस्तित्ववादी नाटकों का उद्‌देश्य होता है। व्लादिमीर और एस्ट्रागन इंतजार करते रह जाते है, अपनी स्वतंत्रता खोजे बिना कैसे सर्जनशील कार्य कर पाएंगे?

सैमुअल ब्रैकेट के 'वेटिंग फॉर गोडोट', ज्याँ पॉल सार्त्र के 'नो एक्ज़िट', यूजीन इओनेस्को के 'द बाल्ड सोप्रानो', 'राइनोसरेस' ; हारोल्ड पिंटर के 'द बर्थडे पार्टी', 'द होमकमिंग' आदि नाटकों की तरह 'तांबे के कीड़े' हिंदी साहित्य में एक ऐसा ही एब्सर्ड नाटक है, भुवनेश्वर प्रसाद श्रीवास्तव (1911-1957) द्‌वारा 1946 में रचित। द्‌वितीय विश्व युद्‌ध के ठीक बाद लिखा गया यह नाटक, मानव जीवन की व्यर्थता, भय, भ्रम और अस्तित्व की निरर्थकता को चित्रित करता है। इस नाटक में ड्राइंग रूम का एक दृश्य है, जहाँ पात्र—जैसे थका अफसर, परेशान रमणी, मसरूफ पति, रिक्शेवाला, महिला अनाउंसर और एक पागल आया—एक-दूसरे से टकराते हैं। संवाद टुकड़ों में बिखरे हैं: एक आया दूर से पुकारती है, "तुम्हारे स्वेटर में कीड़े लग रहे हैं," जो पति को चौंका देती है। अनाउंसर की आवाज़ गूँजती है—"हमारी सबसे ताजी ईज़ाद, काँच के स्वेटर। इनको सिर्फ ताँबे के कीड़े खा सकते हैं"—और अंत में "तांबे के कीड़े" का जाप जीवन की व्यर्थ आविष्कारों का प्रतीक बन जाता है। पात्र भय और भ्रम में डूबे हैं, जीवन की लड़ाई से थक चुके हैं। "तांबे के कीड़े" अमरता की कोशिशों को व्यंग्य से उजागर करने वाला प्रतीक हैं।

अंत में, यह कहूँगा कि 'बंद रास्तों के बीच' नाटक मानव जीवन की अर्थहीनता, तर्कहीनता और अस्तित्व की निरर्थकता को दर्शाता है। यानि मानव जीवन में कोई निश्चित उद्‌देश्य या अर्थ नहीं है। इस नाटक में कई गंभीर विषयों को हास्य और विडंबनापूर्ण तरीके से प्रस्तुत किया जाता है। यह हास्य अक्सर काला हास्य (dark humor) होता है, जो मानव स्थिति की विडंबनाओं को उजागर करता है। इसके पात्र अक्सर एक-दूसरे से अलग-थलग हैं। भारत में एब्सर्ड नाटकों का प्रभाव सीमित रहा, लेकिन कुछ नाटककारों जैसे भुवनेश्वर प्रसाद श्रीवास्तव, बादल सरकार और विजय तेंदुलकर ने अपने नाटकों में अस्तित्ववादी और एब्सर्ड तत्वों का उपयोग किया। यह नाटक दर्शकों के लिए गहरे

Janak: A Journal of Humanities
(I S S N : 3 1 1 7 - 3 4 6 2) Volume: 01, Issue: 01, August, 2025
Available on https://janakajournal.in/index.php/1/about

दार्शनिक सवाल छोड़ देता हैं, बिना कोई स्पष्ट जवाब दिए। इसकी नाट्य शैली न केवल मनोरंजन करती है, बल्कि मानव स्थिति पर गहन चिंतन के लिए प्रेरित करती है। 'नो एक्ज़िट' के हिन्दी अनुवाद 'बंद रास्तों के बीच' के लिए विवेकानन्द जी डॉ ऋतु शर्मा की जितनी तारीफ की जाए, उतनी कम है क्योंकि अपने वर्षों की मेहनत के बाद उन्होंने हिन्दी जगत को नोबल पुरस्कार विजेता ज्याँ पॉल सार्त्र की कालजयी नाटक की अस्तित्ववादी अवधारणा से परिचित करवाया है और इस नाटक के नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा के द्वारा अनेक सफल मंचन से भारतीय समाज को मानव जीवन की सार्थकता हेतु किए जाने वाले कार्यों के लिए प्रेरित किया है। आर्ट ऑफ लिविंग के संस्थापक श्री रवि शंकर जी सही कहते हैं :- 'अपनी आस-पास की दुनिया को सुंदर बनाओ, जहां भी आप रहते हो'। यही इस नाटक का मूल-तत्व है। 'बंद रास्तों के बीच' नाटक का हिन्दी जगत में भरपूर स्वागत होगा, इसी आशा-आकांक्षा के साथ।